समकालीन पुरूष रचनाकारों के हिन्दी उपन्यासों में केन्द्रित महिला हिंसा के विविध आयाम

श्रद्धा निगम,

शोधछात्रा–हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस दृष्टि से साहित्य के रूपों का विकास समाज की धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ होता है। वास्तव में, साहित्य के रूपों की संरचना का आधार उस सामाजिक संरचना पर पूर्णतः निर्भर करता है, जिसमें साहित्य के रूपों की उत्पत्ति होती है। साहित्य का प्रत्येक रूप सामाजिक विकास की विशेष अवस्था में व्याप्त विचारधारा से प्रेरित होता है, जिसके फलस्वरुप मानव समाज पर इसका गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य की एक विधा के रुप में उपन्यासों का मानव समाज के निर्देशन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उपन्यास केवल यथार्थ की खोज और उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, अपितु यह अनन्त सम्भावनाओं का अन्वेषण भी है।

मानव समाज के इतिहास में जो विषमता सबसे अधिक गहरी, स्थायी और अमानवीय रूप में व्याप्त है, वह सामाजिक विकास के प्रत्येक चरण में पुरूष और स्त्री के मध्य वैचारिक भिन्नता का परिणाम है। वास्तविकता तो यह है, कि मातृ सत्तात्मक व्यवस्था से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मानव समाज का परिवर्तन पुरूषों के लिए भले ही सभ्यता का विकास है, किन्तु स्त्रियों के लिए यह आज भी अपनी पराधीनता के विरूद्ध संघर्ष की एक अन्तहीन प्रक्रिया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की पराधीनता की श्रृंखला की कड़ियाँ असंख्य हैं, जिनमें से कुछ प्रत्यक्ष है और कुछ अपरिलक्षित भी। प्रत्येक युग में स्त्रियों की पराधीनता मानव समाज के विकास में एक बड़ी बाधा रही है। इस दृष्टि से साहित्यकारों ने समय–समय पर स्त्रियों की इसी दासता को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है और इस दिशा में मानव समाज को मार्ग निर्देशित करने का सफल प्रयास भी किया है। इसके साथ ही, साहित्यकारों ने अपने कथा साहित्य में वैचारिक धरातल पर स्त्रियों की स्वतंत्रता की आवश्यकता का समर्थन करते हुए समाज में उन्हें निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए भी प्रोत्साहित किया है।

Keywords : *पितृसत्तात्मक व्यवस्था, विचारधारा, महिला हिंसा, दहेज प्रथा, भारतीय संस्कृति, अनमेल विवाह, स्त्री शोषण, वर्चस्वता।*

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उदय ही समाज में स्त्रियों की स्थिति के बोध के साथ हुआ है। उपन्यास विधा के प्रारम्भिक दौर में अधिकांश उपन्यासों की विषय–वस्तु स्त्री केन्द्रित समस्याओं पर आधारित थी। इस सम्बन्ध में चाहे गौरीदत्त का 'देवरानी–जेठानी की कहानी' हो या श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', इन सभी उपन्यासों में भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का यथार्थ

चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही, इन उपन्यासों में स्त्रियों की दशा सुधारने के विषय में रचनाकारों द्वारा गहन चिन्तन की अभिव्यक्ति भी की गई है। इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य में पुरूष लेखकों की दृष्टि से भारतीय स्त्रियों की वर्तमान स्थितियों और उनके भविष्य को निर्देशित करने का सफल प्रयास किया गया है। साहित्यकार मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, कि ''उपन्यास केवल एक साहित्यिक रूप नही है, वह जीवन–जगत को देखने की एक विशेष दृष्टि है और मानव–जीवन तथा समाज का विशिष्ट बोध भी।''[1] वास्तव में, प्रत्येक साहित्यकार की रचना के सृजन का माध्यम भिन्न–भिन्न होता है और साहित्यकारों की मौलिक विचारधारा, जीवनानुभूति और वस्तुओं को देखने की अपनी एक अलग दृष्टि होती है। इसके साथ ही, साहित्यकार के भाव, उसकी गहन संवेदना और समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री शोषण के विभिन्न पहलुओं और स्त्रियों की मुक्ति की आकांक्षा के प्रश्न को उठाया है, किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है, कि स्वतंत्रता पूर्व प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और यशपाल जैसे साहित्यकारों ने भी अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन की 'घर के भीतर से बाहरी दुनिया तक' भूमिकाओं के निर्वहन तथा स्त्रियों की व्यथा–कथा के प्रत्येक सूक्ष्म पहलू का विवेचन प्रस्तुत किया है। आधुनिक समय में आज भी महिलाओं के प्रति हो रही हिंसा का भयानक रूप देखने को मिलता है और यह महिला हिंसा पारिवारिक, धार्मिक व सार्वजनिक स्थलों पर कई रूपों में विद्यमान है। प्रत्येक समाज में घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव साहित्यकारों पर गहरी छाप छोड़ता है और समाज में होने वाली हिंसात्मक घटनाएं साहित्यकारों को भी परेशान करती हैं, जिसे वे अपने उपन्यासों में अपनी लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

वैचारिक भिन्नता उसके द्वारा अनुभव किए गए यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हैं। इस प्रकार एक साहित्यकार अपने जीवन के अनुभवों के द्वारा ही मनुष्य की स्थितियों और संवेदनाओं के संजाल में प्रवेश कर अन्वेषक की भूमिका के रूप में कार्य करता है। इस विषय में भीष्म साहनी लिखते हैं, कि ''लेखक के संवेदन को उसके संस्कार, उसका परिवेश, उसके अपने अनुभव, उसका पठन–पाठन आदि जो उसे जीवन–दृष्टि देते हैं, उसकी साहित्यिक रूचियाँ आदि सभी प्रभावित करते हैं।.... पर इन प्रभावों–संस्कारों के रहते भी कलाकार का अपना कलाकार के नाते स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। उसका संवेदन कुछ बातों को नकारता, कुछ को स्वीकारता–अंगीकार करता है। उसकी अपनी मौलिक दृष्टि उसमें से पनपती है।''[2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय महिलाओं को लोकतांत्रिक समाज में कुछ सीमा तक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, फिर भी उनकी मूल स्थिति में विशेष परिर्वतन नहीं हुआ है। इस समस्या का केन्द्र स्त्री के भीतर छिपी हुई असुरक्षा की भावना तथा उसके आश्रित होने की नियति में है। यही कारण है, कि आज भी महिला समाज उन्हीं विसंगतियों का शिकार है, जो समाज में वर्षों से व्याप्त हैं। हिन्दी के पुरूष उपन्यासकारों ने स्त्री की इसी शोषित स्थिति को अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति में पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में भारतीय संस्कारों से जुड़ी हुई विवाहिता स्त्री के जीवन में अनेक समस्याएं होती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अमरकान्त द्वारा रचित 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में राजलक्ष्मी के वैवाहिक जीवन में देखने को मिलता है। राजलक्ष्मी और उसके पति झुल्लन पांडे पर उसकी माँ अतिराजी का अतिशय नियंत्रण होता है, जिससे झुल्लन अपनी नवविवाहिता पत्नी से दूर रहता है, वह अपनी

पतोह के पीछे सदा काली छाया की तरह डोलती रही, ताकि वह झुल्लन पांडे से मिल न सके। रात में उसकी खाट वह अपनी बगल में बिछवाती। देर रात तक वह अपना बदन पतोह से दबवाती, फिर शेष रात खट–खुट किए रहती। कभी उठती और सोती हुई पतोह को घूरती रहती।''[3] इस प्रकार आत्मविश्वास की कमी और अपनी माँ का वैवाहिक सम्बन्धों में अधिकाधिक हस्तक्षेप अन्ततः झुल्लन पांडे को वैरागी बना देता है तथा उसकी पत्नी राजलक्ष्मी को बेघर कर देता है।

इसी प्रकार कैलाश बनवासी कृत 'लौटना नहीं है' उपन्यास में जब गौरी के पिता और भाई तीज के त्यौहार पर उसे लेने के लिए उसके ससुराल जाते हैं, तब एक पड़ोस की महिला गौरी के भाई राजेश से कहती है, कि''.... बेटा तेरी बहेन भौत सीधी है,.... तुम लोगों ने उसकी शादी कैसे नीच आदमी के साथ कर दी। दुनिया में लड़कों की कोई कमी थी क्या?... तेरा जीजा तेरी दीदी को भौत तंग करता है, रोज दारू पीकर आता है, मारपीट करता है।... वो लड़की सच्ची में भौत बरदास करती है।''[4] इस प्रकार लेखक ने अपने उपन्यास में एक विवाहित स्त्री के जीवन की समस्याओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भारतीय समाज में दहेज प्रथा सबसे बड़ा अभिशाप माना जाता है। समाज में स्त्रियों को इस अभिशाप के कारण शारीरिक और मानसिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। आधुनिक समाज में लड़की शिक्षित हो या अशिक्षित, दहेज के बिना उसका विवाह असम्भव हो गया है। आज अविवाहित स्त्रियों की सबसे बड़ी समस्या उनके विवाह की है और विवाह की समस्या प्रत्यक्ष रूप से दहेज से जुड़ी हुई है। दहेज प्रथा की इसी समस्या को भगवानदास मोरवाल ने अपने 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास में जैनब के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। जैनब अपने निकाह के बाद मुरझा जाती है और उसका पति उसके पास आने से मना कर देता है। तब जैनब को याद आता है, कि एक दिन उसकी सास और ननद आपस में बात कर रही थी, कि ''अब तो तू भी कर ले एक मोटर साइकिल को इन्तजाम अगर ब्याह में मोटर साइकिल और मिल जाती तो....''[5] बाद में मोटर साइकिल मिल जाने पर जैनब के पति को उससे कोई शिकायत नहीं रहती है।

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक पवित्र बन्धन माना जाता है। इस वैवाहिक बन्धन में स्त्री–पुरूष की वैचारिक समानता आवश्यक है, अन्यथा विवाह एक बोझ बनकर रह जाता है। कैलाश बनवासी कृत 'लौटना नहीं है' उपन्यास में गौरी का पति राजकुमार अव्वल दर्जे का शराबी–कबाबी है, इस भरोसे के साथ और गौरी के भाग्य तथा नियति को मानकर उसका विवाह कर दिया जाता है, कि शादी के बाद सभी लड़के सुधर जाते हैं और गौरी जैसी लड़की उसे ठीक कर देगी। इतना ही नहीं, राजकुमार के विषय में उसके घरवाले बताते हैं, कि वह फॉरेस्ट विभाग में गार्ड की नौकरी करता है। परन्तु शादी के बाद यह झूठ सबके सामने खुलता है। ''गौरी का घर से शादी के बाद विदा होना बेटी का हँसी–खुशी वाला विदा होना नहीं था। वह गहरे संशय से भरी विदाई थी, जिसमें भविष्य के नाम पर केवल अँधेरा दिखता था।''[6] इस प्रकार लेखक ने अपने उपन्यास में भारतीय समाज में होने वाले अनमेल विवाह की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया है।

भारतीय नारी की समस्या का प्रारम्भ उसके बचपन से ही होता है। नारी के रूप में जन्म लेना ही उसके लिए अभिशाप है। वह बचपन से ही उन सुविधाओं से वंचित की जाती है, जो पुरूष वर्ग को प्राप्त है। अमरकान्त द्वारा रचित 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं और एक परित्यक्त स्त्री की उन समस्याओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है, जिसके अनुसार एक अकेली स्त्री कमजोर होने के कारण सबकी

सम्पत्ति मानी और समझी जाती है। राजलक्ष्मी के पति के घर छोड़कर जाने के बाद सुन्नर पांडे का बहनोई रामजस तिवारी सहानुभूति की आड़ में राजलक्ष्मी के साथ छेड़छाड़ तथा दुष्कर्म करने की कोशिश करता है, ''वह जब मौका मिलता सुन्नर पांडे की पतोह को बुरी तरह घूरने लगते। वह या तो, वहाँ से हट जाती या घूँघट को और लम्बा कर लेती। जब वह दूसरे आँगन में कुएँ से पानी भरने जाती, रामजस तिवारी पता नहीं किधर से पहुँच जाते।''[7] इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से भारतीय समाज में परित्यक्त स्त्रियों की पीड़ा को अनुभव कर यह अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, कि किस प्रकार एक अकेली स्त्री आजीवन अपने पति की प्रतीक्षा करते हुए जीवन के संघर्ष और विषम परिस्थितियों का सामना करने के साथ ही पितृसत्तात्मक समाज के शोषण को सहन करती है।

भारतीय परिवारों में आज भी नारी बचपन से ही उपेक्षित रही है। साथ ही, सभी प्रकार से उपेक्षा और तिरस्कार सहते हुए विवाह के बाद भी पुरूष प्रधान समाज में उसका परिवार में शोषण होता रहा है। पितृसत्तात्मक समाज की एक कटु सच्चाई यह है, कि एक बार किसी अकेली स्त्री के जीवन में झांकने की गुंजाइश बनते देख परिवार के दूसरे सदस्य भी इस बात का लाभ उठाने में पीछे नहीं रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अमरकान्त के 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में उस समय दृष्टिगत होता है, जब राजलक्ष्मी की सास अपने पति से कहती है, कि बहू के साथ 'अरे जाइए न आप भी बहती गंगा में हाथ धो आइए'[8] इस प्रकार सुन्नर पांडे की पतोह पारिवारिक हिंसा और शोषण के भय के आतंक से बेघर होकर बिना किसी उद्देश्य के अपना जीवन निर्वाह करती है, क्योंकि बच्चों की असामयिक मृत्यु, पति का घर छोड़कर चले जाना और माता–पिता की मृत्यु उसके अपने मायके में लौटने की सम्भावना भी समाप्त कर देती है।

स्त्री शोषण का एक कारण शिक्षा का अभाव तथा अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी है। शिक्षा के अभाव के कारण स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हो सकती। पुरूष को इस बात का पूरा आभास है, कि शिक्षित महिलाएं कभी भी उनकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगी, उसकी हर बात बिना तर्क के नहीं मानेंगी। भगवानदास मोरवाल कृत 'बाबल तेरा देस में' उपन्यास में इसी भय के कारण घर के पुरूष शकीला के पढ़ने–पढ़ाने के कार्य का विरोध करते हुए कहते हैं, कि ''गुनाह न है तो और का है। सारी हवेली कह री है के तू इन छोरीन्ने पढ़ा ना री है, इन्ने काफिर बणा री है।''[9] वास्तव में, पुरूषों को यह महसूस होने लगता है, कि यदि स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई तो उसकी वर्चस्वता में कमी आ जाएगी। इससे पुरूष समाज द्वारा महिला शक्ति को चोट पहुँचाने के लिए उसका शोषण किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप शकीला मानसिक प्रताड़ना के चलते बच्चियों को पढ़ाना छोड़ देती है।

इसी प्रकार कैलाश बनवासी कृत 'लौटना नहीं है' उपन्यास में गौरी जिस समाज में रहती है, उस समाज में लड़की एक बोझ की तरह समझी जाती है। माँ–बाप के लिए एक ऐसा बोझ जिससे मुक्ति जितनी जल्दी हो विवाह में ही होती है। गौरी को आठवीं की पढ़ाई करने के बाद परिवार में उसे आगे पढ़ने पर मना कर दिया जाता है, क्योंकि ऐसे समाज में ''लड़की का ज्यादा पढ़ना–लिखना अच्छी बात नहीं मानी जाती। ज्यादा पढ़–लिख लेने से लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं।... बाबा यानी दादा का तो एकदम साफ कहना था कि, 'और ज्यादा पढ़कर क्या करेगी? लड़की जात कितना ही पढ़–लिख ले उसको तो आखिर चूल्हा ही फूंकना है।' इधर माँ, काकी का कहना था, 'बेटियों को तो सयानी होते ही घर के कामकाज में चंट हो जाना चाहिए नही तो ससुराल में जाने पर मायके वालों की नाक कटेगी?''[10]

भारतीय समाज में नारी को जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में समझौता करने की शिक्षा उसके परिवार वाले ही देते है। एक विवाहित स्त्री को कभी ससुराल वालों की प्रतिष्ठा के लिए झुकना पड़ता है, तो कभी मायके वालों की मान–मर्यादा के लिए विपरीत परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है। अमरकान्त द्वारा रचित 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में इस समस्या की ओर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है, कि किस प्रकार समाज में बदनामी के खतरे को देखते हुए माता–पिता अपनी बेटी के हाथ पीले करने में जल्दबाजी कर देते हैं, जिससे समाज में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महिला हिंसा को बढ़ावा मिलता है। राजलक्ष्मी की दस वर्ष की उम्र में उसका मौसा माहेश्वर पांडेय उसके साथ दुष्कर्म करने का प्रयत्न करता है, ''वह धीरे से किसी चोर की तरह दालान के अन्दर चले गए, भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और चुपके से उस कोठरी के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए, जिसमें राजलक्ष्मी सोई थी।... राजलक्ष्मी एकदम बच्ची थी, निर्दोष व अनजान, पर माहेश्वर पांडेय की हैवानियत खूँटा तोड़कर बेतहाशा दौड़ने लगी।''[11] इस घटना का राजलक्ष्मी और उसके माता–पिता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप इस घटना ने राजलक्ष्मी के भविष्य के रास्ते अंधेरे में गुम कर दिये और राजलक्ष्मी का विवाह सुन्नर पांडे के बेरोजगार लड़के झुल्लन पांडे से कर दिया जाता है। इस प्रकार कैलाश बनवासी के ''लौटना नहीं है' उपन्यास में गौरी का पति उसे खूब मारता–पीटता है, जिससे परेशान होकर वह वापस अपने मायके चली जाती है। गौरी के घरवाले उसे वापस ससुराल भेजने के लिए उस पर दबाव बनाते है, किन्तु गौरी अपने ससुराल जाने से मना कर देती है, ''उसने अपना फैसला कर लिया था। सत्रह साल की गौरी। पता नहीं अभी वह अपने जीवन को कितना आगे तक देख पा रही थी। आगे जीवन की कठिनाईयाँ चाहे जो हों, इस समय वह उस व्यक्ति से मुक्त होना चाहती थी जिससे उसे पति के नाम पर जोड़ दिया गया था।''[12]

भारतीय समाज धार्मिक विश्वासों की सुदृढ़ नींव पर आधारित व्यवस्था है, परन्तु कभी–कभी यही धार्मिक विश्वास रीति–रिवाज और परम्पराएँ नारी शोषण में विशेष भूमिका निभाते हैं। इन धार्मिक मान्यताओं ने महिलाओं के सामाजिक व पारिवारिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है, जिसका चित्रण हिन्दी उपन्यासकारों की रचनाओं में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' ग्रामीण जनता में शिक्षा के अभाव और नवीनता के प्रति अरूचि होने के कारण धार्मिक पाखण्ड करने वाले ऐसे ढोंगी कल्लन का उल्लेख किया है, जो धार्मिक आस्था के नाम पर गाँव की स्त्रियों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करता है। गाँव में स्त्रियों को यदि कोई बीमारी हो, बच्चा न होता हो या फिर जिन स्त्रियों को बेटे की इच्छा हो, ऐसी स्त्रियों की समस्याओं का निवारण कल्लन उन्हें दवा के नाम पर कागज की पुड़िया देकर करता है। इसी कारण शकीला और बत्तो भी इस कल्लन के धोखे का शिकार बनती हैं। शकीला की शादी को दो–तीन बरस हो गए, किन्तु सन्तान न होने पर दादी जैतूनी उसे कल्लन के पास चलने के लिए कहती हैं। शकीला को ऐसी बातों पर विश्वास नहीं होता है, फिर भी दादी की बात को मानने के लिए वह उनके साथ चली जाती है। जब शकीला ढोंगी बाबा दरवेस के पास जाती है, तब दरवेस बाबा अन्धविश्वास के नाम पर शकीला की उंगलियों को और उसके हाथों को गलत तरीके से स्पर्श करता है। तब शकीला को उस पर सन्देह अवश्य होता है, किन्तु समाज के भय से वह इसका प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर पाती है। इस प्रकार लेखक ने अपने उपन्यास में धर्म के नाम पर होने वाले अन्धविश्वासों की वास्तविकता को उजागर करने का प्रयास किया है। साथ ही इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है, कि धर्म का

सर्वाधिक विकृत स्वरूप तब सामने आता है, जब धर्म की आड़ में नारी का शोषण होता है।

भारतीय समाज में आर्थिक परिस्थिति के कारण नैतिक मूल्यों का पतन होता दिखाई देता है। पुरूष लेखकों के उपन्यासों में इसका रूप भी स्पष्ट दिखाई देता है। अमरकान्त द्वारा रचित 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में राजलक्ष्मी को जीवन–यापन के लिए खाना बनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं आता। फलस्वरूप अपने ससुराल को छोड़ने के बाद सुन्नर पांडे की पतोह जीवन–यापन के लिए एक पेशकारिन के घर खाना बनाने का कार्य करती हुई अपने रहने के लिए छत, भोजन और कपड़ा जुटाने में सफल होती है। राजलक्ष्मी के जीवन में जैसे ही कुछ स्थायित्व आने लगता है, तत्पश्चात् हिंसा और दुष्कर्म से उसका पुनः सामना होता है, जो इस बार सुखदेव पंडित नाम के मास्टर के रूप में दिखाई देता है। राजलक्ष्मी उसका विरोध करती है, ''पहले सुखदेव पंडित ने दो–तीन बार खटखटाया, फिर वह दरवाजे के फाँफर में हाथ डालकर अँगुलियों से जंजीर खोलने की कोशिश करने लगा।.... सुन्नर पांडे की पतोह बेहद डर गई। सहसा उसकी नजर आलमारी पर रखी कैंची पर पड़ी। उसने कैंची हाथ में ले ली और उसके अन्दर हिलती–डुलती दो प्रमुख अंगुलियाँ दबा दीं।''[13]

इतना ही नहीं, पेशकारिन का पति मन्नीलाल भी राजलक्ष्मी पर गलत नजर रखता है और एक दिन अवसर पाकर वह सुन्नर पांडे की पतोह का हाथ पकड़कर अपनी घटिया हरकतों पर उतर आता है, ''दिन पर दिन उनकी उम्मीदें बढ़ती गईं और एक शाम को जब वह बाहर के बैठक में उनको नाश्ता देने आई तो उन्होंने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। सुन्नर पांडे की पतोह झटके से अपना हाथ छुड़ाकर उस कमरे से निकल गई।''[14] इस प्रकार विवेचित उपन्यास घरों में काम करने वाली स्त्रियों की असुरक्षा के प्रश्न को समकालीन परिवेश में उजागर करते हुए पुरूष समाज की संकुचित मानसिकता पर भी प्रकाश डालता है।

पुरूष प्रधान समाज में भारतीय स्त्रियों का आर्थिक परिस्थिति के कारण सदैव ही शोषण होता रहा है। आर्थिक समस्याओं के कारण स्त्रियों को निरन्तर पुरूष समाज के अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। कैलाश बनवासी द्वारा रचित 'लौटना नहीं है' उपन्यास में गौरी की पढ़ाई जहाँ से छूट गयी थी, उसे वह पुनः शुरू करना चाहती है। प्राइवेट फार्म भरकर वह हाईस्कूल की परीक्षा पास करती है और नौकरी की तलाश करती है। एक दिन गौरी को पता चलता है, कि गौरी के पति की मृत्यु हो गयी है। समाज की नजर में गौरी अब एक विधवा और एक दुखियारी स्त्री थी। अब गौरी जैसे बिल्कुल ही बदल गयी थी। वह इस घर और समाज को छोड़कर कहीं बहुत दूर चली जाना चाहती थी। इसी समय बालग्राम नामक एक एन0 जी0ओ0 में गौरी का चयन हो जाता है। जिस बालग्राम के लिए उसका चयन होता है, उसके अन्दर की दुनिया और उसकी वास्तविकता कुछ और ही है, परन्तु गौरी बालग्राम में रूकने का निर्णय लेती है। ''आखिर वहाँ भी रहेगी तो उसका जीवन कुछ बदलने वाला नहीं बल्कि ये जगह उसके लिए घर से ठीक है।... अपने समाज को तो आप जानते हो। नहीं, शायद हम लोग उसे उतने अच्छे से नहीं जानते जितनी ऐसी लड़कियां। वरना क्या कारण है, कि लड़कियाँ यहाँ खुशी–खुशी रहने को राजी हैं, इतने कष्टों को जानने के बाद भी, ऐसा जेलखाना होने के बाद भी।''[15] इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में आर्थिक समस्याओं से संघर्ष कर स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करने वाली स्त्रियों की समस्याओं को रेखांकित करने का भी प्रयास किया है। साहित्यकार योगेन्द्र शर्मा के शब्दों में, ''महिलाओं ने शोषण, अत्याचार और असमानता के विरूद्ध सतत् संघर्षरत रहकर प्रगति की ओर सार्थक रूप

से कदम बढ़ायें हैं, यद्यपि अब भी उन्हें वह सब–कुछ प्राप्त नहीं हो सका है, जो उनके लिए अपेक्षित है।''[16]

उपसंहार

महिला हिंसा चाहे जैसी भी हो, कारण सिर्फ एक ही है– पितृसत्ता से ग्रसित मानसिकता, जो महिला के शरीर, उसकी कोख या उसकी सम्पत्ति आदि सभी पर अपना नियंत्रण चाहती है और यदि किसी कारणवश नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाता, तो महिलाओं की हत्या तक कर दी जाती है। इस प्रकार समाज में महिला हिंसा, शोषण और उत्पीड़न की समस्याएँ विभिन्न रूपों में विद्यमान है। विडम्बना तो यह है, कि जिस परिवार या समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका अद्वितीय है, उसी परिवार या समाज में ही महिलाओं के विरूद्ध हिंसा देखी जाती है।

1. अग्रवाल नीरू, भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास, अनन्य प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2018, पृ0सं0–36.
2. अग्रवाल रोहिणी, हिन्दी उपन्यास का स्त्री–पाठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2015, पृ0सं0–172
3. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2005, पृ0सं0–54
4. बनवासी कैलाश, लौटना नहीं है, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2014, पृ0सं0–126
5. मोरवाल भगवानदास, बाबल तेरा देस में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2010, पृ0सं0–301
6. बनवासी कैलाश, लौटना नहीं है, वही, पृ0सं0–111,112
7. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, वही, पृ0सं0–26
8. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, वही, पृ0सं0–49
9. मोरवाल भगवानदास, बाबल तेरा देस में, वही, पृ0सं0–301
10. बनवासी कैलाश, लौटना नहीं है, वही, पृ0सं0–17,18
11. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, वही, पृ0सं0–41
12. बनवासी कैलाश, लौटना नहीं है, वही, पृ0सं0–150

[13]. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, वही, पृ0सं0–94

[14]. अमरकान्त, सुन्नर पांडे की पतोह, वही, पृ0सं0–95

[15]. बनवासी कैलाश, लौटना नहीं है, वही, पृ0सं0–238

[16]. शर्मा योगेन्द्र, महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण–2020, पृ0सं0–146